(ii) अनासक्त कर्म—साधारणतः काम भावना मनुष्य को किसी कर्म के लिए प्रेरणा का काम करता है। विषयों के ध्यान से मनुष्य की उससे आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से काम (इच्छा) उत्पन्न होता है। काम से क्रोध होता है और क्रोध से मोह अर्थात् बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अतः मनुष्य की निर्णय शक्ति कर्म-अकर्म का भेद नहीं कर सकती। अतः विषयों से आसक्ति हटानी है। इसके लिए इन्द्रियों को वश में कर बुद्धि को स्थिर करना आवश्यक है। इस स्थिति में मनुष्य लाभ-हानि की भावना से प्रेरित नहीं होता। यही अनासक्त कर्म है। जिसने ऐसा अभ्यास कर लिया है वही कर्मयोगी है। ऐसा आत्मसंयम से ही संभव है।

(iii) निष्काम कर्म—अनासक्त कर्म कैसे सम्भव है ? कर्म करने से विषयों से आसक्ति होती है। आत्मसंयम के द्वारा विषयों से आसक्ति घटती है। पहला प्रवृत्ति-पथ है, दूसरा निवृत्ति पथ। पहला कर्मवाद है, दूसरा सन्यासवाद। एक भोग है, दूसरा योग। दोनों का समन्वय कैसे होता है ? गीता में दो प्रकार का कर्म बतलाया गया है, एक है, सकाम कर्म। जब मनुष्य किसी कामना या इच्छा से प्रेरित होकर कोई शारीरिक या मानसिक कर्म करता है तब वह सकाम कर्म है। यह किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए अर्थात् किसी फल की आकांक्षा से कर्म होता है, अतः उसका शुभ या अशुभ फल मिलता है। इस प्रकार कर्म की शृंखला चलती रहती है। दूसरा है, निष्काम कर्म। इसमें कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है। यह तृष्णा रहित कर्म है। यदि कर्मफल अर्थात् कुछ पाने की इच्छा छोड़ दी जाय तो कर्म करने से आसक्ति नहीं होगी। कर्म में कोई खराबी नहीं होती। उसके प्रति हमारी भावनाएँ खराब या अच्छी होती है। इन भावनाओं को समान समझना योग है। इसी योग से कर्म करने पर आसक्ति नहीं होती है। मन को इन्द्रियों के विषय से हटाकर कर्म करना निष्काम कर्म है। अतः कर्मवाद की फलाकांक्षा को दूर करना और अकर्मवाद की अकर्मण्यता से बचने पर निष्काम कर्मवाद बनता है। गीता में कहा गया है :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संग स्वकर्मणि॥

कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, न कि कर्म के फल पर। कभी कर्मफल को अपना हेतु मत बनाओ। कभी अकर्म में अपनी आसक्ति न रखो।

इससे यह स्पष्ट है कि गीत में कर्मवाद और अकर्मवाद का समन्वय हुआ है।

निष्काम कर्म के दो पक्ष हैं; एक इस भावना का त्याग कि मैं कर्त्ता हूँ अर्थात् ममता का त्याग और दूसरा आसक्ति का त्याग। कर्म के फल से आसक्ति को हटाना अर्थात् तृष्णा का त्याग। ऐसे ही कर्म निष्काम कर्म हैं और इनसे बन्धन कटता है। 'मैं कर्त्ता हूँ' का बोध तभी समाप्त होता है जब यह समझ आती है कि मनुष्य के सभी कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा कृत है। प्रकृति के तीन गुण हैं—सत्व, रज और तम। इन तीनों से ही मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ और शब्द आदि उत्पन्न होते हैं। इन्हीं से क्रियाएँ होती हैं, अतः अपने को कर्त्ता मानना अज्ञान का परिणाम है। फिर आसक्ति का त्याग तभी हो सकता है जब आत्मलाभ या ईश्वरलाभ की दृष्टि से कर्म किया जाय। इसी में लोकसंग्रह भी है क्योंकि वह भी ईश्वर का ही कार्य है। इस प्रकार कर्म से आसक्ति का अभाव हो जाता है। किसी अन्य इच्छा से किया गया कर्म अनासक्त कर्म नहीं है। अतः निष्काम कर्म काम्य कर्मों का त्याग नहीं है। ईश्वरलाभ की दृष्टि से किया गया कर्म

Scanned with CamScanner

अनासक्त कर्म है। यही निष्काम कर्म है। इससे ही मनुष्य ईश्वर से जुड़ता है। अतः इसे अनासक्ति योग या निष्काम कर्म योग भी कहा जाता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि गीता के कर्मयोग में कर्म के साथ ज्ञान तथा भक्ति दोनों का सहयोग आवश्यक है। निष्काम कर्म के लिए यह ज्ञान कि 'मैं कर्त्ता नहीं हूँ' और ईश्वर के प्रति श्रद्धा आवश्यक है।

(iv) ज्ञानयोग — ज्ञानयोग ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ने का आध्यात्मिक मार्ग है। शंकर ने गीता को मुख्य रूप से ज्ञानयोग का ही ग्रन्थ माना है। वे निवृत्ति मार्ग का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार वही यथार्थ मार्ग है। निवृत्ति मार्ग को कर्म-सन्यास भी कहा जा सकता है। इसलिए निवृत्ति मूलक ज्ञान-मार्ग के द्वारा कर्म का त्याग ही वास्तविक मार्ग है। तत्त्व ज्ञान हो जाने से सारे बन्धन कट जाते हैं और आत्मलाभ हो जाता है। तत्त्व ज्ञान में तत्त्व-चेतना रहती है, जिसमें निम्न तथ्य रहते हैं—

(i) तत्त्व अविनाशी और नित्य है। यह अपरिवर्तनशील है। परमात्मा ही तत्त्व है। आत्मा भी परमात्मा का स्वरूप है।

(ii) अतत्त्व का अस्तित्व कभी सम्भव नहीं है। दृश्यमान् जगत् मिथ्या है। यह भी ईश्वर का स्वरूप है। अतः सृष्टि स्रष्टा में कोई भेद नहीं है।

(iii) तत्त्वज्ञान हो जाने पर सभी कर्म समान लगने लगते हैं। इसे ही गीता में समत्व योग कहा गया है। इसके तीन रूप हैं—

(i) **आत्मगत समत्व** — जब सभी कामनाओं और वासनाओं का त्याग हो जाता है तो बुद्धि स्थिर हो जाती है। तब सभी कर्मों में समनाता का ज्ञान होता है और सभी कर्म ईश्वरार्थ होते हैं, परिणाम होता है, कि ज्ञानी सुख दुख से परे हो जाता है। इसी अवस्था को गीता ने स्थितप्रज्ञ कहा है।

(ii) **वस्तुगत समत्व** — शुभ-अशुभ, मित्र एवं शत्रु में समभाव वस्तुगत समत्व है।

(iii) **गुणातीत समत्व** — यह सुख दुख से परे की अवस्था है। ज्ञानी के लिए सभी गुणों में समानता की चेतना रहती है। इसीलिए ज्ञानी को समदर्शी कहा गया है। इस प्रकार ज्ञानयोग के द्वारा आत्मा और परमात्मा में तादात्म्य हो जाता है।

(v) **भक्तियोग** — भक्ति का अर्थ है सेवा करना, अतः सेवा के द्वारा परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ना भक्तियोग है। रामानुज ने गीता को मुख्य रूप से भक्तियोग का ग्रन्थ माना है। जब मनुष्य को यह चेतना हो जाती है कि आत्मा अमर है, सब कुछ ईश्वर की रचना है और वही सबका नियामक है तो उसके प्रति उसकी श्रद्धा हो जाती है। ईश्वर के प्रति प्रेम होने जाने से भक्त भगवान के रंग में रंग जाता है। वह हर ओर भगवान को ही देखने लगता है। वह अपने को भगवान के चरणों में समर्पित कर देता है। भगवान भी भक्त को शरणागति प्रदान कर देते हैं। भगवान् को समीप पाकर आत्मविभोर हो जाता है। वह मोक्ष की इच्छा नहीं भगवान् के चरणों में निवास करना चाहता है।

भक्त के नौ प्रकार माने गए हैं—(i) भगवान् के गुणों को सुनना, (ii) गुणों को स्मरण करना, (iii) गुणगान करना, (iv) उसकी सेवा करना, (v) पूजा करना, (vi) वन्दना करना, (vii) मित्र मान करना,

Scanned with CamScanner

(vii) अपने को उसका दास मानना, (viii) अपने को उसका मित्र-सखा मानना और (ix) आत्म-समर्पण।

भक्त ईश्वर की अराधना द्वैत भाव से करता है। वह ईश्वर को पूर्ण और स्वयं को अपूर्ण विचारता है। भगवान् का भजन तथा उनकी सेवा ही भक्ति-मार्ग है।

भक्ति मार्ग की विशेषता है ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम। ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य का भाव मन में नहीं लाना अनन्य भाव है। अनन्य भाव से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। अनन्य भक्ति को गीता में अनन्य चित भी कहा गया है। अनन्य चित्त होकर ईश्वर का स्मरण करने से ईश्वर की प्राप्ति अवश्य होती है। अतः भक्ति योग की दो विशेषताएँ हैं—आत्म-समर्पण और अनन्य प्रेम। इससे ही आनन्द की प्राप्ति होती है।

(vi) साधनों का मूल्य और गीता का उनमें समन्वय—अलग-अलग विचारकों ने तीनों भर्गों का अलग-अलग मूल्य बतलाया है। पर भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के मार्ग हैं। उनमें कोई भी दूसरे से कम या अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। उपनिषदों में भी भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों को ब्रह्म विद्या का साधन माना गया है। तीनों का समान महत्त्व है। अलग-अलग व्यक्ति की अलग-अलग प्रवृत्ति होती है। उसी के अनुसार वह तीनों में से किसी एक का पालन कर सकता है। फिर यह भी कि तीनों का आधार मनोवैज्ञानिक है। एक को दूसरे से सम्पूर्णतः विलग नहीं किया जा सकता। यदि ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो तो उसके प्रति श्रद्धा कैसे उत्पन्न होगी? अतः भक्ति योग के लिए ज्ञान योग आवश्यक है। वही तर्क कर्मयोग के लिए भी है। यदि ईश्वर के प्रति श्रद्धा नहीं हो तो ईश्वर लाभ के लिए कोई कर्म कैसे किया जा सकता है ? अतः, कर्मयोग के लिए भक्ति योग आवश्यक है। तीनों योग एक-दूसरे से जुड़े हैं।

गीता के अनुमार मानव-जीवन का लक्ष्य चिर शान्ति या सुख को प्राप्त करना है। सुख आनन्द में अन्तर है। सुख क्षणिक तथा परिवर्तनशील है, आनन्द चिरस्थायी तथा अनन्त है। यह निष्काम कर्म की साधना का फल है। प्रकृति सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से बनी है। सत्व सुख रूप, रज दुख रूप और तप मोह रूप हैं। इसीलिए सांसारिक पदार्थों से हमें सुख, दुख और मोह एक साथ मिलते हैं। आत्मा प्रकृति के परे हैं। अतः आत्मलाभ से आनन्द की प्राप्ति होती है। यह कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीनों से प्राप्य है। इसलिए गीता का नीति सिद्धान्त आनन्दवाद और समन्वयवाद है।

20·8 गीता का निष्काम कर्म और कांट का कर्त्तव्य कर्त्तव्य के लिए का सिद्धान्त

गीता के निष्काम कर्मयोग की तुलना कुछ विचारकों ने कांट के कर्तव्यवाद से की है। गीता में अहंकार और आसक्ति रहति कर्म को निष्काम कर्म कहा गया है। ऐसे कर्मों में फल की कामना नहीं रहती और कर्तव्य को कर्तव्य जानकर किया जाता है। कांट ने भी कर्तव्य को निरपेक्ष आदेश कहा है और उसे कर्तव्य की भावना से करना आवश्यक माना है। दोनों ही लोक संग्रह को आदर्श मानते हैं। दोनों में बल है आत्मसंयम पर। इन समानताओं के बावजूद दोनों में मौलिक अन्तर है। गीता के अध्यात्मवाद और कांट के कर्त्तव्यवाद में मौलिक भेद है। गीता के अनुसार ईश्वर-प्राप्ति ही निष्काम कर्म में कार्यों का लक्ष्य होता है। गीता का ईश्वर भक्तों को शरणागत कर लेता है। निष्काम कर्मयोगी की आत्मा का ईश्वर से तादात्म्य हो जाता है।

Scanned with CamScanner